२२८ कलश है न? नियमसार, २२८ कलश।

आत्मानमात्मनात्मायं युनक्त्येव निरन्तरम्।
स योगभक्तियुक्तः स्यान्निश्चयेन मुनीश्वरः।।२२८।।

श्लोकार्थः जो यह आत्मा... आत्मा किसे कहते हैं?—कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप पवित्र, वह आत्मा। उसे **यह आत्मा आत्मा को...** आहाहा! **आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है,...** आत्मा को, आत्मा के साथ। आत्मा को अर्थात् निर्मल परिणति से आत्मा, निर्मल परिणति से आत्मा को जोड़ता है। आहाहा! (समयसार की) तीसरी गाथा में आया न? '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे**' प्रत्येक पदार्थ एकत्व निश्चय को प्राप्त, वह सुन्दरता को पाता है। अर्थात् कि आत्मा, बन्ध के सामने भी नहीं देखता। दूसरी चीज़ है स्व से अनन्त, उसके सामने भी नहीं देखता और स्वयं आत्मा निश्चय

एकत्वनिश्चयगतः स्वयं आत्मा में **एकत्वनिश्चयगतः** समय सुन्दर है। अन्दर शुद्धपरिणति में रहे, वह सुन्दर है। बाकी शुद्धपरिणति से बाह्य बन्धकथा। एक आत्मा को राग और शरीर की कथावाला कहना, वह विसंवाद-झगड़ा है, विपरीत बात है। आहाहा!

एकत्वनिश्चयगतः आहाहा! स्वयं अपना एकत्वस्वरूप, वह शुद्ध आत्मा। उस आत्मा को अर्थात् शुद्धपरिणति द्वारा आत्मा को जोड़ता है। आहाहा! **एकत्वनिश्चयगतः** हुआ। उसमें बन्ध का सम्बन्ध नहीं, पर का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! तथा उस समय में वह पर्याय होने का क्रम है। आहाहा! वह आत्मा.. यह निमित्त का झगड़ा बड़ा। आज बहुत सब आये थे। श्वेताम्बर में... परन्तु बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक समय में अपनी पर्याय से परिणमित होता है, उसे अब दूसरे का काम क्या है? दूसरे की अस्ति हो या न हो, उससे काम क्या है? स्वयं ही आत्मा **एकत्वनिश्चयगतः** पर के सम्बन्ध बिना एकत्व आत्मा में समय, उस एकत्वपने को प्राप्त हो, वह लोक में सुन्दर है। वह शान्ति और आनन्द का कारण है। आहाहा! यहाँ तक जाना। अभी तो निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है, क्रमबद्ध नहीं होता - ऐसे विवाद! आहाहा!

एक ही बोल में पाँचों ही बोल उड़ जाते हैं। एक आत्मा अपने समय में परिणमन करके आत्मा के साथ जोड़ता है। बस, इसमें क्रमबद्ध आ गया; इसमें निश्चयगत स्वभाव अपनी परिणति आ गयी; वह पर का कर्ता नहीं - यह आ गया। आहाहा! समस्त तीनों सम्प्रदायों में मूल बात में अन्तर है। निमित्त से होता है... निमित्त से होता है। निमित्त से होता है तो जो चीज़ है, उस चीज़ ने क्या किया? वह चीज़ पर्यायरहित रही? आहाहा! सर्वत्र यह विवाद। यह श्वेताम्बर का 'कल्याण' आया है न? उसमें भी निमित्त का विवाद। एक आर्यिका है, वह भी (कहती है) निमित्त से होता है, उससे होता है। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य परिणमन रहित कोई काल है कि उसके परिणमन को दूसरा परिणमन करे? आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, **जो यह आत्मा...** कहा न? यह आत्मा (अर्थात्) प्रत्यक्ष। आहाहा! **जो यह आत्मा...** शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द। उस **आत्मा को...** निर्मलपर्याय द्वारा **आत्मा के साथ...** आहाहा! यह वस्तु, यह जैनदर्शन, यह जैनधर्म। **आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ जोड़ता है,...** यह जैनधर्म। आहाहा! इसकी बात तो पड़ी रही और बाहर की बातें (चल दी), इसका यह करो, इसका यह करे और इसका यह करे। यह तो इसमें आ गया - शिल्पी में। कारीगर-कारीगर किसी पदार्थ की क्रिया नहीं करता। कारीगर भले

हो, परन्तु वह किसी परपदार्थ को स्पर्श नहीं करता अर्थात् करता नहीं। आहाहा! कारीगर भी अपनी पर्याय में ही रहता है। वह पर्याय जो कुछ... काम होवे लोहा या (चाहे जो हो), उसे स्पर्श नहीं करता, तो उसका कार्य किस प्रकार करे? आहाहा!

मुमुक्षु :- कारीगर सुवर्ण को घड़ता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- घड़ता नहीं। घड़ता नहीं और स्पर्श भी नहीं करता।

मुमुक्षु :- तो कौन घड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वयं जो पदार्थ है, उसकी पर्याय उस काल में होनेवाली हो, वह होती है। जो वह पदार्थ है, उसकी पर्याय का काल है, उस समय। उस समय में क्रमबद्ध में उसकी पर्याय होती है। कारीगर कुछ नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन लगती है। जैनदर्शन ही यह है। जैनदर्शन वस्तुस्वरूप है। वह कोई पक्ष-पन्थ नहीं है। वस्तु जो है आत्मा, वह स्वयं अपना निर्मलपना, निर्मलपने की परिणति से उस आत्मा के साथ जोड़े, ऐसा ही उसका समय का काल है। क्रमबद्ध में वही स्थिति खड़ी होती है और पर का कर्ता नहीं होता। बन्ध का जुड़ान कहना, वह झगड़ा है। आहाहा! बात तो एकदम सादी और सीधी है, परन्तु कर रखी है ऐसी कि इसके बिना यह नहीं होगा... इसके बिना यह नहीं होगा... इसके बिना यह होगा नहीं।

यहाँ कहते हैं कि किसी के बिना किसी का (न) हो - ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! निकट में शरीर और कर्म है एकक्षेत्रावगाह में, तथापि उनकी पर्याय आत्मा नहीं करता। आहाहा! स्वयं पर्यायरहित नहीं है, इसलिए वह आत्मा अपनी निर्मल पर्याय को करता... आहाहा! वह निर्मल पर्याय हुई, वह ही आत्मा को जोड़ती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान जो परिणति आत्मा को, वह आत्मा के साथ जोड़ती है। अब यह मार्ग है। इससे कम, अधिक, विपरीत कुछ भी करे तो सब अत्यन्त विपरीत है। आहाहा! यह प्रत्यक्ष प्रसिद्ध और सिद्ध है।

वह अपनी परिणति द्वारा **आत्मा को आत्मा के साथ...** आहाहा! **निरन्तर जोड़ता है,...** जैसे आत्मा निरन्तर ध्रुव है, वैसे ध्रुव सन्मुख का झुकाव भी नित्य है। आहाहा! आत्मा ध्रुव नित्य है, वैसे उसकी ओर की सन्मुखता की परिणति भी नित्य है। उसे धर्म और योग कहा जाता है। आहाहा! ऐसे शब्द सुने भी न हों, (उसे) धर्म हो जाए! अरे! भाई! वीतराग

सर्वज्ञ परमात्मा का कथन भी ऐसा है। ज्ञान में तो ज्ञात होता है, परन्तु वाणी में ऐसा आता है। आहाहा! यह आत्मा राग के कारण आत्मा में जुड़े-ऐसा नहीं कहा है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प करे, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति (करे), देव-गुरु-शास्त्र को माने। यह माने, वह इसे अनुकूल पड़े तो उससे अन्दर जाया जाए - यह बात यहाँ नहीं की है और किसी गाथा में नहीं की है। आहाहा!

यह आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ... त्रिकाल आत्मा के साथ अपनी शुद्ध परिणति को झुकाता है। जो परिणति परसन्मुख झुकी हुई है, वह परिणति कहीं पर के कारण परसन्मुख झुकी हुई नहीं है। झुकी हुई है स्वयं से। आहाहा! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। जो परिणति पर के साथ अनादि से झुकी हुई है, वह परिणति वहाँ रहो। बाद की परिणति को उसके आत्मा के साथ जोड़ दो। आहाहा! उसे योग कहा जाता है। उसे आत्मा का व्यापार कहा जाता है। इसका नाम आत्मव्यापार है। आहाहा! बाकी सब पाप व्यापार है। पुण्य का व्यापार भी पाप व्यवहार है। आहाहा!

निरन्तर जोड़ता है, वह मुनीश्वर निश्चय से योगभक्तिवाला है। उसने स्वभाव का जुड़ान किया। जो परसन्मुख का जुड़ान था, वह जुड़ान स्व-सन्मुख किया, वह योगभक्तिवाला है। आहाहा! कहो, ऐसा है। शान्तिभाई! कुछ सुना नहीं और कहीं ठिकाना नहीं। वाड़ा में भी कहीं नहीं।

मुमुक्षु :- दिल्ली में मिलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं दिल्ली में नहीं मिलता और कोलकाता में भी नहीं मिलता। यहाँ का अब चला है, वह है। यहाँ का चला, अब उसकी चर्चा चलती है। बाकी यह बात थी ही नहीं। आहाहा!

आत्मा क्रमबद्ध अपनी पर्याय को, वह भी निर्मल को करे, तब वह कर्ता कहलाता है। आहाहा! इसके अतिरिक्त सब बातें व्यर्थ है। आत्मा पवित्र है, शुद्ध है; इसलिए वह शुद्धपरिणति करे, तब उस परिणति का जुड़ान स्व से ही होता है। अशुद्ध परिणति का जुड़ान पर के साथ होता है, तो भी अशुद्ध परिणति पर से नहीं हुई। पर में नहीं हुई, पर से नहीं हुई; पर को स्पर्श किये बिना हुई है। आहाहा! अब यहाँ तो योगभक्ति कहनी है। शुद्धपरिणति, शुद्ध आत्मा है-पवित्र है; उसकी पवित्र की परिणति पवित्र के साथ जोड़ दे, उसे यहाँ धर्म का योग अर्थात् व्यापार कहा जाता है। आहाहा!

गाथा-१३८

सव्ववियप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३८।।

सर्वविकल्पाभावे आत्मानं यस्तु युनक्ति साधुः।
स योग-भक्ति-युक्तः इतरस्य च कथं भवेद्योगः।।१३८।।

अत्रापि पूर्वसूत्रवन्निश्चययोगभक्तिस्वरूपमुक्तम्। अत्यपूर्वनिरुपरागरत्नत्रयात्मकनिज-चिद्विलासलक्षणनिर्विकल्पपरमसमाधिना निखिलमोहरागद्वेषादिविविधविकल्पाभावे परम-समरसीभावेन निःशेषतोऽतर्न्मुखनिजकारणसमयसारस्वरूपमत्यासन्नभव्यजीवः सदा युनक्त्येव, तस्य खलु निश्चययोगभक्तिर्नान्येषां इति।

सब ही विकल्प अभाव में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३८॥

अन्वयार्थ : [यः साधु तु] जो साधु [सर्वविकल्पाभावे आत्मानं युनक्ति] सर्व विकल्पों के अभाव में आत्मा को लगाता है (अर्थात् आत्मा में आत्मा को जोड़कर सर्व विकल्पों का अभाव करता है), [सः] वह [योगभक्तियुक्तः] योगभक्तिवाला है; [इतरस्य च] दूसरे को [योगः] योग [कथम्] किस प्रकार [भवेत्] हो सकता है?

टीका : यह भी पूर्व सूत्र की भाँति निश्चय-योगभक्ति का स्वरूप कहा है।

अति-अपूर्व [१]निरुपराग रत्नत्रयात्मक, [२]निजचिद्विलासलक्षण निर्विकल्प परमसमाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,

---

१. निरुपराग=निर्विकार; शुद्ध। [परम समाधि अति-अपूर्व शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप है।]
२. परम समाधि का लक्षण निज चैतन्य का विलास है।

परमसमरसीभाव के साथ [१]निरवशेषरूप से अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है, उसे वास्तव में निश्चयोगभक्ति है; दूसरों को नहीं।

गाथा - १३८ पर प्रवचन

१३८ गाथा।

सव्ववियप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३८।।

सब ही विकल्प अभाव में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३८॥

आहाहा! **टीका : यह भी पूर्व सूत्र की भाँति निश्चय-योगभक्ति का स्वरूप कहा है।** आहाहा! **अति-अपूर्व निरुपराग रत्नत्रयात्मक,...** आहाहा! पूर्व में एक समय भी नहीं हुआ - ऐसा जो अपूर्व रत्नत्रयभाव। स्वसन्मुखता का-शुद्ध भगवान चिदानन्द का धाम, निज धाम-सन्मुख का... आहाहा! अपूर्व अति। पूर्व में कभी किया नहीं। **अति-अपूर्व निरुपराग... निर्विकार; शुद्ध। [परम समाधि अति-अपूर्व शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप है।]** आहाहा! अभी तो स्थानकवासी के साधु योग के शिविर लगाते हैं। योग के। ऐसा करना, ऐसा करना और ऐसा करना, ऐसा करना। सब गप्प ही गप्प है। अरे रे! प्रभु!

मुमुक्षु :- देखें तो सही कैसी निकालते हैं ये, क्या सीखते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री :- सीखते हैं, वह योग ऐसा करो और वैसा करो। ऐसे एकाग्र होओ। मूल तो विकल्प कम करो। विकल्प कम करो, इसका नाम योग, इसका नाम धर्म।

यहाँ कहते हैं कि **सव्ववियप्पाभावे** आहाहा! है मूल में? आहाहा! **अति-अपूर्व निरुपराग...** अनन्त काल में नहीं किया, ऐसा रागरहित भाव (अर्थात्) रत्नत्रयस्वरूप— सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्रस्वरूप **निजचिद्विलासलक्षण...** आहाहा! **परम समाधि का लक्षण निज चैतन्य का विलास है।** शुद्ध चैतन्य का विलास। आहाहा! शुद्ध चैतन्य की

---

१. निरवशेष=परिपूर्ण। [कारणसमयसारस्वरूप परिपूर्ण अन्तर्मुख है।]

क्रीड़ा, जिसने शुद्ध चैतन्य में क्रीड़ा की है... आहाहा! उसे चैतन्य विलास कहते हैं। जगत के विलास अज्ञानी मूढ़ पत्थर में और पैसे में मानता है। आहाहा! यह तो **अति-अपूर्व निरुपराग रत्नत्रयात्मक, निजचिद्विलासलक्षण...** अपने ज्ञान का विलास लक्षण। अपना आनन्द और ज्ञान वीतरागस्वरूप, ऐसा जो चिद्विलासलक्षण। आहाहा! क्या लक्षण?

निर्विकल्प परमसमाधि द्वारा... विकल्प का अभाव, राग का अंश नहीं। आहाहा! जैसा वीतरागी स्वभाव है, वैसी ही वीतरागी परिणति द्वारा... आहाहा! **परमसमाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का...** यह सब कहे, देखा! **समस्त मोहरागद्वेषादि...** राग का, एक विकल्प का अंश नहीं। आहाहा! **समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर, परमसमरसीभाव के साथ...** आहाहा! परमसमरसीभाव। परमसमरसी। समतारूप परम समता, परम वीतराग, परम शान्त, ऐसा जो भगवान स्वभाव। **परमसमरसीभाव के साथ निरवशेषरूप से...** पूरा-पूरा। कारणसमयसारस्वरूप पूरा-पूरा अन्तर्मुख है। आहाहा! भगवान जो ध्रुव है, वह पूरा-पूरा अन्तर्मुख है। जरा भी बहिर्मुख नहीं। इसलिए अन्तर्मुख में अन्तर्मुख होना जिसे, उसे उसके जैसा जो अन्तर्मुख है, उसके जैसा होना चाहिए। वह विकल्परहित, रागरहित, वह नित्य है, तो उसके साथ जुड़ान करनेवाला सर्वविकल्परहित। आहाहा!

अब इसमें व्यवहार से हो और निमित्त से हो... श्वेताम्बर में और स्थानकवासी में बड़ा झगड़ा। आहाहा! अभी ध्यान में, लक्ष्य में भी बात न ले, वह अन्तर में किस प्रकार जा सकेगा? आहाहा! जिसे नहीं कहते कि ऐ! यह बात ध्यान में तो ले, लक्ष्य में तो ले। ऐसे जो लक्ष्य में भी बात नहीं कि वर्तमान निर्मल परिणति, वह अन्दर में जा सकती है, तब उसे धर्म और मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। आहाहा! बाकी लाख व्रत करे और अपवास करे और मन्दिर में अरब रुपये खर्च करे, दस-दस लाख के बड़े गजरथ निकाले, बीस-बीस लाख के, रथयात्रा निकाले। धूल में भी कुछ नहीं होता। आहाहा! उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं मिलता। जरा भी लाभ नहीं और नुकसान पूरा है। आहाहा! ऐसी बात! प्रौषध करे, आठ-आठ अपवास करे, चारों आहार (छोड़कर) पर्यूषण के। आठ-आठ निर्जल उपवास (करे)। ओहोहो! इन भाईसाहब ने तो बहुत किया। ओहोहो! और उसमें छोटी उम्र का हो, १५-२० वर्ष की उम्र का। ओहोहो! भारी धर्म किया इसने। धूल में भी

धर्म नहीं है। ऐसे आठ उपवास क्या, २५-१०० करे नहीं। आहाहा! यह तो आठ तो (श्वेताम्बर में) पर्यूषण के दिन होते हैं। दिगम्बर में दस करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, परमात्मा स्वयं अन्दर विराजता है, उसके साथ जुड़ान करे, उसकी जाति की परिणति द्वारा उसके साथ जुड़ान करे। आहाहा! **समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,...** देखो! जैसा स्वरूप मोह और राग-द्वेषरहित है, वैसा ही परिणति में मोह, राग-द्वेषरहित भाव करके। आहाहा! अरे! ऐसा धर्म। लोग न कहे कि यह तो नया धर्म निकाला। एकान्त है रे एकान्त है। सर्वत्र यह पुकार करते हैं। अखबार (जैन समाचारपत्र) में आता है, बहुत। एकान्त है... एकान्त है। विरोध करो। अरे! भगवान! प्रभु! तूने सुना नहीं, प्रभु! आहाहा! और उल्टी मान्यता में दुःख होगा, प्रभु! आहाहा! वह दुःख हो, यह कोई ठीक है? किसी भी प्राणी को दुःख हो, वह... आहाहा!

सब भगवान है। भगवान होओ। सब कर्मरहित होओ। कोई दुःखी न होओ भाई! आहाहा! ऐसा द्रव्यसंग्रह में है। कोई दुःखी न होओ। सब सुखी (होओ)। सब कर्मरहित होओ, प्रभु! आहाहा! ऐसा धर्मी विचार करता है। आहाहा! किसी की विपरीत मान्यता और उंघाई के कारण तुम दुःखी होओ-ऐसा नहीं चाहता। आहाहा! क्योंकि द्रव्य प्रभु तो परमात्मा है, प्रभु! उस द्रव्य से तो तुम साधर्मी हो। आहाहा! पर्यायदृष्टि छोड़कर, प्रभु! द्रव्यदृष्टि करके मुक्त होओ। आहाहा! भगवानस्वरूप है, वह भगवान होओ। प्राप्त की प्राप्ति है। भगवान होता है, वह भगवान था, वह होता है। भगवानस्वरूप परमात्मा आत्मा है। आहाहा! यह कहा न?

समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,... पर्याय की बात की। वह तो पर्याय की बात है, यह तो। वस्तु तो त्रिकाल एकरूप (रहती है)। चाहे तो अनन्त बार छियासठ हजार भव निगोद के लिये, परन्तु आत्मा तो जैसा है, वैसा का वैसा ही त्रिकाल निरावरण है। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का सागर है। आहाहा! उसे **मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों...** विविध प्रकार के विकल्प। एक प्रकार के नहीं। आहाहा! कोई आर्तध्यान के, कोई रौद्रध्यान के, कोई मान-सम्मान के और कोई विषय सम्बन्धी तथा कोई महात्ता सम्बन्धी और कोई... आहाहा! ये सब विकल्प मोह और राग-द्वेष है। उनका **अभाव होने पर, परमसमरसीभाव के साथ...** आहाहा! भगवान परमरसी

स्वभाव है। शान्त वीतराग शान्त... शान्त... शान्त... परम समरसीभाव, परम समताभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वरूप प्रत्येक भगवान है। प्रत्येक भगवान निर्विकल्प समरसीभावस्वरूप है। आहाहा!

उसके **साथ निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** आहाहा! पूरा-पूरा अन्तर्मुख होकर, **निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** अर्थात् कुछ बाकी रखे (बिना) अन्तर्मुख होकर। आहाहा! कोई भी एक सूक्ष्म विकल्प गुण-गुणी के भेद का, द्रव्य-पर्याय के भेद का भी नहीं। आहाहा! निरवशेषरूप से—कुछ बाकी रखे बिना। **अन्तर्मुख...** पूर्णतः अन्तर्मुख। आहाहा! **निज कारणसमयसारस्वरूप को...** निज कारणसमयसारस्वरूप को **जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** समयसारस्वरूप को—ध्रुव को जोड़ता है। आहाहा!

कारणसमयसारस्वरूप को जो... निर्मल पर्याय से जोड़ता है। **अति-आसन्नभव्य जीव...** आहाहा! अति आसन्न भव्य जीव। एक-दो भव में मोक्ष जाने की तैयारी है। आहाहा! परन्तु इसका कुछ साधन होगा या नहीं? यह साधन कहा जाता है न! कहा जाता है तो यह साधन; दूसरा साधन नहीं है, दूसरा बाधक है। व्यवहार के क्रियाकाण्ड के जितने राग—दया, दान, व्रत, भक्ति हैं, वे सब बाधक हैं, जहर हैं। यह तो अमृतस्वरूप है तो अमृतस्वरूप की परिणति द्वारा इसे जोड़ दे। आहाहा! विकल्परहित का अर्थ यह। आहाहा! ऐसा निवृत्ति लेकर पढ़ा भी नहीं होगा। शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है न! आहाहा! आहाहा!!

निरवशेषरूप से अन्तर्मुख... होकर। क्योंकि प्रभु स्वयं अन्तर्मुख वस्तु है। बाह्य में कहीं नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय में भी वह नहीं है। आहाहा! वह तो ध्रुवस्वरूप भगवान... निरुपराग। आहाहा! **अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को...** निज कारणसमयसार स्वयं भगवान। परमात्मा वीतराग पंच परमेष्ठी नहीं। आहाहा! पंच परमेष्ठी ऐसा कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखना रहने दे। आहाहा! पंच परमेष्ठी का पुकार है। अरिहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं कि हमारे सामने देखना रहने दे; वहाँ जा। आहाहा! तू महानिधान है न, नाथ! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति भरी है न, प्रभु! परमसमरसीभाव से भरपूर है न! आहाहा!

परमसमरसी—समता के रस से भरपूर भगवान आत्मा। आहाहा! पूरी दुनिया हिल जाए परन्तु वहाँ कुछ हिले नहीं। प्रतिकूलता के ढ़ेर पूरी दुनिया के आवे तो भी वह

परमसमरसीभाव कुछ फिरता नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान परमसरमरसीभाव है। आहाहा! उसके साथ कुछ बाकी रखे बिना **अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को...** आहाहा! **जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** आहा! इसका अर्थ ऐसा भी होता है कि जो वर्तमान मोक्ष का मार्ग है, वह कारणसमयसार है। निज कारणसमयसारस्वरूप को जो जोड़ता है, ऐसा कहना होवे तो। वर्तमान जो निर्मल परिणति है, वह निज कारणसमयसार। त्रिकाल है, वह तो है, परन्तु मोक्ष का मार्ग है, वह निज कारणसमयसार है। आहाहा!

निज कारणसमयसारस्वरूप को.... अपना जो कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग... आहाहा! **जो अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** ऐसे स्वरूप को पूर्णानन्द के साथ, समरसीभाव के साथ निज कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग, उसे अति आसन्न भव्य जीव (जोड़ता है)। आहाहा! अति आसन्न भव्य जीव—मोक्ष का जिसे अब किनारा (निकटता) आ गया है। अब संसार का तो किनारा आ गया है। मोक्ष में ऐसे एक कदम रखे इतनी देर है। नौका से उतरे और वहाँ जाए। आहाहा! ऐसे **अति-आसन्नभव्य जीव सदा जोड़ता ही है,...** अपनी निर्मल कारणसमयसार दशा को अन्दर त्रिकाली कारणसमयसार के साथ जोड़ता है। आहाहा! समझ में आया? कारणसमयसार दो प्रकार के हैं—एक त्रिकाली कारणसमयसार और एक वर्तमान पर्याय, वह कारणसमयसार। आहाहा! वह वर्तमान पर्याय वीतरागी कारणसमयसार जो है, उसे त्रिकाली कारणसमयसार के साथ जोड़ता है। आहाहा!

उसे वास्तव में निश्चयोगभक्ति है;... वही वास्तव में निश्चययोग अर्थात् स्वरूप में जुड़ान—ऐसी भक्ति है। स्वरूप में जुड़ान के बिना की बातें सब विकल्प की जितनी हैं, वह सब पर के साथ जुड़ान है। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! और मिला, तब कहता है, एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है। निश्चयगत... आहाहा! एक द्रव्य दूसरे का स्पर्श नहीं करता। ऐई..! निश्चय हो गया। निश्चय अर्थात् सत्य है। स्पर्श नहीं करता, परन्तु क्रमसर होता है। आहाहा! क्रमसर होता है और पर का कर्ता होता नहीं। आहाहा! ऐसी परिणति को कारणसमयसार कहते हैं। उस निज कारणसमयसार परिणति को द्रव्य के साथ जोड़े। आहाहा! समझ में आया? इसमें? सूक्ष्म तो है, भाई!

पूरे दिन पाप का व्यापार और धन्धा कर-करके पोटला बाँधा हो, आहाहा! और लड़कों तथा स्त्री को संभालना और महत्ता करना। आहाहा! लड़की का विवाह करे तो

बड़ी मानो मण्डप और ससुर को बड़ी बारात को लेने आवे और लेने जाए। आहाहा! हम क्या करते हैं! अरे प्रभु! कुछ कर नहीं सकता, प्रभु! उसका तू अभिमान करता है। आहाहा! आत्मा के राग-द्वेष और अभिमान के अतिरिक्त उस अज्ञान में कुछ भी नहीं कर सकता। अज्ञान में भी मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। ज्ञान में सम्यग्दर्शन और रागरहित दशा कर सकता है। आहाहा! अब इसमें पर को सुखी करो और पर को मदद करो, इससे तुम्हे धर्म होगा। आहाहा! वह व्यवहारधर्म है। व्यवहारधर्म है, इसका अर्थ ही यह है कि धर्म नहीं है। आहाहा! निश्चय... निश्चय... निश्चय... बापू! निश्चय अर्थात् प्रभु! सत्य। परम सत्य कसौटी में चढ़ा हुआ। आहाहा! परम सत्य कसौटी में चढ़ी हुई चीज़ निर्मत परिणति से अन्दर में जा। सर्व से अन्तर्मुख हो, तब तुझे धर्म होगा। कुछ भी बहिर्मुख रहे, तब तक धर्म नहीं है। आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत, समिति और गुप्ति तथा महीने-महीने के चार प्रकार के आहार का त्याग करके अपवास करके मरकर सूख जाए। आहाहा! वह धर्म नहीं है। आहाहा! अब जिसे आग्रह होवे, उसे तो विरुद्ध लगे न? यह सब करते हैं। पूरे दिन बेचारे कितनों की सेवा करते हैं, कितनों को सहायता करते हैं, भूखों के लिये अनाज की व्यवस्था कर देते हैं, पानी की प्याऊ बाँधते हैं, ऐसी गर्मी की लू चले...

मुमुक्षु :- ग्राम गोद लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- लू चले, उसमें मील-मील पर पानी की प्याऊ हो। बहुत लू होवे न! मील-मील में। क्योंकि बेचारा एक मील चलकर जाते हों, तो ऐसी तृषा लगे न! प्याऊ बाँधी हो वहाँ। अपने प्याऊ बाँधी है न, धर्म होगा। आहाहा!

यहाँ तो सब विकल्परहित अकेले आत्मा के साथ जुड़ान कर दे, इसका नाम यहाँ समाधि, योग और धर्म कहा जाता है। आहाहा! देखो! यहाँ तो ऐसा कहा कि ऐसे जो मुनि हैं, वे तो सदा जोड़ते हैं ही। जोड़ न, जोड़ न—ऐसा भी नहीं लिया। आहाहा! ऐसे तू जोड़- ऐसा भी नहीं कहा। जोड़ते हैं ही, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! है? जोड़ते हैं ही। ऐसा कहा न? या जोड़ेगा? आहाहा! **जोड़ता ही है,...** सच्चे सन्त तो उन्हें कहते हैं.. आहाहा! जो निर्मल परिणति को आत्मा के साथ जोड़ते हैं। जोड़ते हैं ही। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं, उन्हें चारित्रवन्त कहते हैं। उन्हें पंच परमेष्ठी में शामिल कर दिये। आहाहा!

मुमुक्षु :- जोड़ने का अर्थ, पर्याय और द्रव्य का भेद न दिखायी दे, ऐसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- भेद दिखायी न दे। उस ओर ढला, इसलिए फिर हो गया। अन्दर ऐसे झुका, तो फिर यह द्रव्य है और पर्याय यह चीज़ है। है ही कहाँ वह ? आहाहा! कथन में तो इतना आता है कि तू कारणसमयसार को कारणसमयसार के साथ जोड़ दे। इस निर्मल वीतराग कारणसमयसार को त्रिकाली परम समरसी समयसार (के साथ) जोड़ दे। आहाहा! इसका नाम योग कहा जाता है। इसका नाम योग कहा जाता है, इसका नाम धर्म कहा जाता है, इसका नाम समाधि कहा जाता है। आहाहा! इसका नाम भक्ति कहा जाता है। भक्ति का अधिकार है न ? इसका नाम भक्ति कहा जाता है। भगवान की भक्ति धम.. धम.. धम.. करे, वह तो विकल्प और व्यवहारभक्ति पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! नाचे-नाचे, फिर ऐसा हो जाए भगवान के पास। वह आता है, नहीं ऊपर ? नाचनेवाला। ऊपर घड़ा ऊँचा रखकर नाचे। यहाँ आया था। मुम्बई आया था कितना घड़ा (हण्डा) रखकर नाचे ऐसे। दूसरों को तो आश्चर्य हो जाए कि ओहो! आदमी, हों सिर पर चार-पाँच-छह घड़े (रखे) और ऐसे से ऐसे नाचे। लोगों को ऐसा लगे कि आहाहा! अब वहाँ कर्ताबुद्धि है। आहाहा! और दिखलाने की बुद्धि है। अरे! प्रभु! मार्ग अलग, बापू! आहाहा!

इसलिए यहाँ कहा न ?—कि निरवशेषरूप से अन्तर्मुख। कुछ बाकी रखे बिना पूर्णत: अन्तर्मुख। नीचे अर्थ किया है न ? **कारणसमयसारस्वरूप परिपूर्ण अन्तर्मुख है।** आहाहा!

मुमुक्षु :- यहाँ पर्याय लेना या द्रव्य ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय। कारणसमयसार पर्याय को जोड़ना है तो पर्याय को लिया जाता है। ध्रुव को कहाँ (जोड़ना है ?) वह तो स्थित है अकेला। जोड़ना है तो पर्याय को। पर्याय पृथक् है और पर्याय को जोड़ना है। ध्रुव तो है, वह है, त्रिकाल निरावरण है। वह कभी अशुद्ध भी नहीं, अपूर्ण भी नहीं, विकार नहीं, आवरण नहीं। आहाहा!

वह **निश्चयोगभक्ति है; दूसरों को नहीं।** दूसरों को नहीं, लो! निषेध किया। दूसरे का निषेध नहीं करना, अपनी बात स्थापित करनी। यहाँ तो कहते हैं **दूसरों को नहीं।** दूसरे सर्वथा निर्विकल्प होकर अन्दर न जोड़े, उसे नहीं। उसे धर्म नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, वह धर्म नहीं। आहाहा! गजब बात है। सुनने को मिलना मुश्किल

पड़ती है। आहाहा! स्पष्ट बात करते हैं न? पाठ में है न? दूसरे को योग किस प्रकार होगा? है? दूसरे को योग किस प्रकार होगा? आहाहा! पाठ में है। **इइदरस्स य किह हवे जोगो। सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।** इसके बिना-अन्तर्मुख हुए बिना दूसरे को योग धर्म-भक्ति कहाँ से होगा? आहाहा! सर्वथा अन्तर्मुख हुए बिना बाहर में भक्ति करे, उसे योगभक्ति कहाँ से होगी? आहाहा! ऐसी बात है।

श्लोक-२२९

[अब इस १३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

भेदाभावे सतीयं स्याद्योग-भक्ति-रनुत्तमा।
तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्तिर्भवति योगिनाम्।।२२९।।

(वीरछन्द)

योगभक्ति हो श्रेष्ठ जब होवे भेद विलीन।
आत्मलब्धिमय मुक्ति को योगी लहें प्रवीण॥२२९॥

[श्लोकार्थ:] भेद का अभाव होने पर यह *अनुत्तम योगभक्ति होती है; उसके द्वारा योगियों को आत्मलब्धिरूप ऐसी वह (-प्रसिद्ध) मुक्ति होती है॥२२९॥

श्लोक- २२९ पर प्रवचन

[अब इस १३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

* अनुत्तम=जिससे दूसरा कुछ उत्तम नहीं है ऐसी; सर्वश्रेष्ठ।

भेदाभावे सतीयं स्याद्योग-भक्ति-रनुत्तमा।
तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्तिर्भवति योगिनाम् ।।२२९।।

आहाहा! अरे! प्रभु! पंचम काल की बात तो आयी। पंचम काल में मुक्ति नहीं होती न! सुन न अब! तीनों काल मुक्तस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! वस्तु जो है, वह तो तीनों काल मुक्त ही है। आहाहा! उसकी मुक्ति, उस पर नजर करने से मुक्ति तुरन्त होती है। आहाहा! श्लोक में, पीछे के श्लोक में है न? भव को स्पर्श करता है, वैसे मुक्ति को स्पर्श करता है। आहाहा! आगे अन्तिम श्लोक हैं। आहाहा! साधक जीव... आहाहा! जरा-सा पूर्ण नहीं है; इसलिए राग को भी देखता है और अन्दर में मुक्ति को भी स्पर्श करता है। भव को भी स्पर्श करता है और मुक्ति को भी स्पर्श करता है, ऐसा पाठ है। समयसार के पीछे के कलश में (है)। आहाहा!

श्लोकार्थ - भेद का अभाव होने पर... आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ में भेद ही करना नहीं। यह द्रव्य है और यह पर्याय है और इस पर्याय को मैं द्रव्य में जोड़ता हूँ—ऐसा भेद ही जहाँ करना नहीं। आहाहा! **भेद का अभाव होने पर यह अनुत्तम योगभक्ति होती है;...** आहाहा! उससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है। आहाहा! भगवान की भक्ति भी इस भक्ति से उत्तम नहीं है। आहाहा! पंच परमेष्ठी की भक्ति भी इस भक्ति के समक्ष वह भक्ति ऊँची नहीं है। आहाहा! वह तो पुण्य का कारण है। आहाहा! एक तो संसार के धन्धे के कारण-पाप के कारण निवृत्त नहीं होता। उसमें पुण्य की भक्ति करे, उसमें भी धर्म नहीं, कहते हैं। मन्दिर में जाकर भगवान की भक्ति करे तो भी धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- पालीताणा जाकर करे तो धर्म होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं धूल में भी नहीं। पालीताणा क्या, सम्मेदशिखर जाए न; लोग कहते हैं कि सम्मेदशिखर में जो जन्मता है, उस वनस्पति को भी मोक्ष है। धूल भी नहीं। ऐसा कहते हैं कि वहाँ जो जन्मे हैं, जो सम्मेदशिखर में... आहाहा! और उसकी जो भक्ति करे, उसे अड़तालीस भव में मुक्ति हो जाती है। आहाहा! साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में विराजमान हैं, उनकी भी भक्ति अनन्त बार की है। आहाहा! सोने की थाली और अन्दर चाँदी के फूल डालकर ऐसे भगवान की भक्ति की है। आहाहा!

मुमुक्षु :- आपने भक्ति बतायी, वह दूसरे प्रकार की भक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह भक्ति है। भजन, भजन, भगवान का भजन। आहाहा! राग का भजन नहीं। आहाहा!

भेद का अभाव होने पर यह अनुत्तम योगभक्ति... आहाहा! **जिससे दूसरा कुछ उत्तम नहीं है ऐसी;...** भक्ति **होती है; उसके द्वारा योगियों को...** आहाहा! ऐसी योगभक्ति द्वारा, उसके द्वारा उन सन्तों को **आत्मलब्धिरूप ऐसी वह (-प्रसिद्ध) मुक्ति होती है।** आहाहा! व्यवहार से होती है-ऐसा नहीं। व्यवहार से निश्चय होता है और निश्चय से मुक्ति (होती है)-ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- यहाँ न लिखा हो, परन्तु अन्यत्र लिखा हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं नहीं लिखा। सर्वत्र क्रमसर अपनी पर्याय अपने से होती है, आड़ी-टेढ़ी नहीं होती, पर का नहीं, यह सर्वत्र बारह अंग और नवपूर्व में भरा है।

मुमुक्षु :- जयसेनाचार्य में व्यवहारभक्ति आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहीं नहीं आती। वह निमित्त का कथन है। आती कहीं नहीं। टीका में आता है साधन। व्यवहार साधन है। वह तो साधन को बतलाया है। साध्य किया, तब साधन कौन था? उसका ज्ञान बतलाया है। जयसेनाचार्य की टीका में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसी मुक्ति... आहाहा! भेद का अभाव होने पर। जहाँ भेद ही नहीं न! कहते हैं। राग तो नहीं, परन्तु गुण-गुणी का भेद नहीं। ऐसी **अनुत्तम योगभक्ति होती है; उसके द्वारा योगियों को आत्मलब्धिरूप...** उस आत्मा की प्राप्तिरूप मुक्ति। है? **ऐसी वह (-प्रसिद्ध) मुक्ति होती है।** आहाहा! उसे यथार्थ मुक्ति होती है। उसे मोक्ष होता है। बाकी दूसरों को मोक्ष नहीं होता। (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)